

गंगासती : लोकभाषा, स्त्री-स्वर और आध्यात्मिक स्वायत्तता

गुजराती संत-परंपरा में स्त्री-अनुभव, ज्ञानाधिकार और आत्मबोध

डॉ. मेधा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

शोधसार: भारतीय भक्ति-साहित्य को केवल धार्मिक भावुकता अथवा ईश्वर-समर्पण की अभिव्यक्ति के रूप में पढ़ना उसके ज्ञानमीमांसीय, सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों को सीमित कर देता है। भक्ति परंपरा ने एक ओर आध्यात्मिक अनुभव को लोकभाषाओं और लोक-संस्कृतियों से जोड़ा, दूसरी ओर अनुभव को धार्मिक ज्ञान की वैध भूमि के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रक्रिया में स्त्री संत-कवयित्रियों की उपस्थिति विशेष महत्व रखती है, क्योंकि उन्होंने स्त्री-अनुभव को केवल भक्ति की विषय-वस्तु न बनाकर आध्यात्मिक ज्ञान की सक्रिय अभिव्यक्ति में रूपांतरित किया। सौराष्ट्र की संत-कवयित्री गंगासती इसी परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। गंगासती के नाम से संबद्ध बावन भजनों की परंपरा में भक्ति, गुरु-तत्त्व, सत्संग, मन की स्थिरता, अहंकार-त्याग, वचन, नैतिक अनुशासन और आत्मबोध के प्रश्न परस्पर संबद्ध दिखाई देते हैं। उनकी कविता की विशिष्टता उसकी लोकाभिमुखता में है। वे दार्शनिक अवधारणाओं को किसी व्यवस्थित शास्त्रीय तंत्र के रूप में नहीं, बल्कि दैनिक जीवन, प्रकृति और लोकानुभव से जुड़े बिंबों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। इसीलिए उनका काव्य लोकभाषा में निर्मित एक प्रकार का लोक-दर्शन प्रस्तुत करता है। इस आलेख का केंद्रीय तर्क है कि गंगासती की भक्ति को भावुक समर्पण के बजाय आत्म-अनुशासन, नैतिक आत्मपरिष्कार और आध्यात्मिक स्वायत्तता की प्रक्रिया के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। पानबाई को संबोधित उनकी वाणी स्त्री से स्त्री तक ज्ञान-संप्रेषण की ऐसी संरचना निर्मित करती है, जिसमें स्त्री स्वयं गुरु, ज्ञान-वक्ता और आध्यात्मिक अनुभव की प्रमाणिक व्याख्याकार बनती है। 'मेरु' और 'मन' का संबंध उनके चिंतन में बाहरी अस्थिरता और आंतरिक स्थैर्य के द्वंद्व को रूपायित करता है, जबकि 'वचन', गुरु और सत्संग आध्यात्मिक चेतना के निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं। इस दृष्टि से गंगासती का काव्य स्त्री-अध्यात्म, लोकज्ञान और ज्ञानाधिकार के प्रश्नों पर पुनर्विचार की संभावनाएँ खोलता है।

मुख्य शब्द:- गंगासती, पानबाई, स्त्री-स्वर, स्त्री-अध्यात्म, आध्यात्मिक स्वायत्तता, लोकभाषा, भक्ति, गुरु-तत्त्व, आत्मबोध, लोकदर्शन।

भक्ति का पुनर्पाठ : भाव से ज्ञान और अनुभव तक

भारतीय भक्ति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक यह है कि उसने धार्मिक अनुभव को केवल संस्थागत अथवा शास्त्रीय ज्ञान के दायरे में सीमित नहीं रहने दिया। भक्ति की विविध क्षेत्रीय परंपराओं में ईश्वर के साथ संबंध व्यक्तिगत अनुभव, स्मरण, गायन, संवाद, प्रेम, समर्पण और आत्मानुभूति के रूपों में व्यक्त हुआ इसीलिए भक्ति को केवल 'devotion' अथवा भावनात्मक धार्मिकता के रूप में

समझना पर्याप्त नहीं है। Karen Pechilis ने भक्ति को सक्रिय सहभागिता और embodiment के संदर्भ में समझने का आग्रह किया है; उनके अनुसार भक्ति में भक्त का धार्मिक अनुभव केवल मानसिक विश्वास नहीं, बल्कि शरीर, वाणी, अभ्यास और सामुदायिक सहभागिता से निर्मित होता है।¹ इस दृष्टि से भक्ति एक जीवन-पद्धति है, केवल भावावस्था नहीं। Jayant Lele भी भक्ति के अध्ययन को सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों

से जोड़ते हैं। उनके अनुसार भक्ति-आंदोलनों को केवल धार्मिक आंदोलन मानने के बजाय उनके सामाजिक संबंधों, समुदाय-निर्माण और वैधता के प्रश्नों के संदर्भ में देखना आवश्यक है।¹² इस सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में गंगासती का अध्ययन अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है। उनकी कविता में भक्ति भावनात्मक उच्छ्वास से अधिक एक ऐसी साधना है जो मनुष्य के भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर परिवर्तन की अपेक्षा करती है।

गंगासती के काव्य में भक्त होना किसी धार्मिक पहचान को धारण करना नहीं है। भक्त को अपने मन, वाणी और व्यवहार को अनुशासित करना है; उसे अहंकार और कर्ताभाव से मुक्त होना है; उसे गुरु-वाणी को सुनना और आत्मसात करना है; उसे विपरीत परिस्थितियों में मन को स्थिर रखना है। इस प्रकार उनकी भक्ति 'विश्वास' से आगे बढ़कर 'आत्म-निर्माण' की प्रक्रिया बनती है। भक्ति का वास्तविक प्रमाण पूजा या बाहरी धार्मिक चिह्न नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर और व्यवहार में आया परिवर्तन है। यहीं गंगासती की कविता ज्ञान और भक्ति के बीच की कृत्रिम दूरी को समाप्त करती है। उनके यहाँ जानना और साधना अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं। आत्मज्ञान का अर्थ स्वयं के जीवन को बदलना है और भक्ति का अर्थ उस परिवर्तन को जीवन में उतारना इसलिए गंगासती को पढ़ते हुए 'भक्ति' को भाव, ज्ञान और आचरण के त्रिकोण में समझना अधिक उपयुक्त होगा।

गंगासती के जीवन-संबंधी ऐतिहासिक विवरणों में लोकस्मृति और स्रोत-परंपराओं के कारण मतभेद हैं। *Women Writing in India* में उन्हें 12वीं-14वीं शताब्दी के अंतर्गत रखा गया है और उनका 'Meru' संबंधी पद प्रस्तुत किया गया है।¹³ दूसरी ओर बाद के स्रोत उन्हें भिन्न कालखंड में रखते हैं; अतः उनके जीवन-काल के संबंध में किसी एक मत को निर्विवाद ऐतिहासिक तथ्य मानना उचित नहीं होगा।

इस आलेख में इसलिए उनकी काव्य-वाणी को प्राथमिक विश्लेषणात्मक आधार बनाया गया है।

स्त्री-स्वर से ज्ञानाधिकार तक : गंगासती और पानबाई

गंगासती के काव्य का सबसे महत्वपूर्ण सैद्धांतिक पक्ष उनके स्त्री-स्वर का स्वरूप है। यहाँ स्त्री केवल बोलने वाली नहीं है, वह जानने वाली और ज्ञान देने वाली भी है। यह अंतर अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्य में स्त्री की उपस्थिति को केवल 'स्त्री की आवाज़' के रूप में देखना पर्याप्त नहीं, क्योंकि प्रश्न यह भी है कि उस आवाज़ को ज्ञान के रूप में कितनी वैधता प्राप्त है। गंगासती और पानबाई का संबंध इसी बिंदु पर महत्वपूर्ण हो उठता है। पानबाई को संबोधित गंगासती की वाणी में स्त्री एक आध्यात्मिक शिक्षक की भूमिका ग्रहण करती है। वह साधना की शर्तें बताती है, मन के स्वरूप पर विचार करती है, गुरु-वाणी को समझने का आग्रह करती है और भक्त के आचरण का मानदंड निर्धारित करती है। इस प्रकार ज्ञान-संप्रेषण की दिशा बदल जाती है। स्त्री अब किसी पुरुष संत अथवा धार्मिक प्राधिकारी के ज्ञान की मात्रा ग्रहणकर्ता नहीं है; वह स्वयं ज्ञान की उत्पादक और व्याख्याकार है।

यह संरचना भारतीय धार्मिक परंपरा में स्त्री की ज्ञानात्मक स्थिति के संदर्भ में विशेष महत्त्व रखती है। David Kinsley ने हिंदू स्त्री-भक्तों के अध्ययन में यह दिखाया है कि स्त्री भक्तों के जीवन में आध्यात्मिक आकांक्षा कभी-कभी प्रचलित सामाजिक भूमिकाओं से वैकल्पिक संबंध स्थापित करती है।¹⁴ गंगासती के यहाँ यह वैकल्पिकता किसी प्रत्यक्ष सामाजिक विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अधिकार के रूप में सामने आती है।

गंगासती का स्त्री-स्वर आधुनिक नारीवादी राजनीतिक भाषा में स्वयं को परिभाषित नहीं करता। उसमें 'पितृसत्ता', 'लैंगिक समानता' अथवा 'स्त्री-अधिकार' जैसे आधुनिक विमर्श-शब्द नहीं हैं। किंतु उनकी काव्य-स्थिति इन

आधुनिक अवधारणाओं से पहले मौजूद एक महत्वपूर्ण प्रश्न को सामने लाती है—**क्या स्त्री आध्यात्मिक सत्य की प्रमाणिक वक्ता हो सकती है?** गंगासती का उत्तर उनकी अपनी वाणी है, इसलिए उनके स्त्री-स्वर को ‘प्रतिरोध’ की संकीर्ण अवधारणा में सीमित करने के बजाय ‘ज्ञानाधिकार’ की अवधारणा से पढ़ना अधिक फलदायी है। वे स्त्री के लिए केवल बोलने का स्थान नहीं बनातीं, वे उसे जानने, समझने, सिखाने और आध्यात्मिक मार्गदर्शन देने का अधिकार प्रदान करती हैं। यही उनकी आध्यात्मिक स्वायत्तता का सबसे गहरा रूप है।

बावन भजन : लोक-आध्यात्मिक शिक्षाशास्त्र

गंगासती के नाम से संबद्ध बावन भजनों की परंपरा को एक विशिष्ट आध्यात्मिक शिक्षाशास्त्र के रूप में पढ़ा जा सकता है। इन भजनों में साधना के विभिन्न पक्ष क्रमशः सामने आते हैं—भक्ति, गुरु, सत्संग, मन की स्थिरता, अहंकार-त्याग, वचन, नैतिक आचरण और आत्मबोध। इस क्रम में भक्ति केवल प्रारंभिक भावावस्था नहीं रहती; वह साधक को धीरे-धीरे आत्मपरिष्कार की ओर ले जाती है। यहाँ ‘शिक्षाशास्त्र’ शब्द का अर्थ किसी औपचारिक पाठ्यक्रम से नहीं है। गंगासती की शिक्षा मौखिक, संवादात्मक और गेय है। वह लोक-स्मृति में सुरक्षित रहने वाली भाषा के माध्यम से साधना की अवधारणाओं को जीवनानुभव से जोड़ती है। यही कारण है कि उनके भजन केवल पढ़े जाने वाले पाठ नहीं, बल्कि गाए और स्मरण किए जाने वाले आध्यात्मिक वचन बन जाते हैं।

इस संदर्भ में गंगासती की कविता को Pechilis की ‘embodied bhakti’ की अवधारणा से जोड़ा जा सकता है। यदि भक्ति सक्रिय सहभागिता है, तो गंगासती की कविता साधना को जीवन के व्यवहार में उतारती है।¹⁵ साधक को सुनना है, बोलना है, सत्संग करना है, अपने मन को देखना है, अहंकार को पहचानना है और विपत्ति में स्थिर

रहना है। इस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान शरीर, मन, वाणी और सामाजिक संबंधों में मूर्त होता है।

बावन भजनों का संवादात्मक स्वर भी उल्लेखनीय है। पानबाई को संबोधित करना कविता को उपदेश और संवाद के बीच की विधा बना देता है। शिष्या केवल ज्ञान ग्रहण नहीं करती; वह उस ज्ञान की संभावित वाहक भी बनती है। इस प्रकार गंगासती की आध्यात्मिक परंपरा स्वयं के बाद भी जारी रहने वाली ज्ञान-परंपरा की कल्पना करती है। यहाँ लोक-आध्यात्मिक शिक्षाशास्त्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता सामने आती है—ज्ञान का मूल्य उसकी जटिलता में नहीं, उसकी **जीवन-परिवर्तनकारी क्षमता** में है। गंगासती दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली का विस्तार नहीं करतीं; वे जीवन को साधना का पाठ बनाती हैं। यही उनकी लोक-दर्शनपरक शक्ति है।

लोकभाषा और ज्ञान का लोकतांत्रीकरण

गंगासती की कविता की शक्ति उसके विषयों जितनी ही उसकी भाषा में भी निहित है। भक्ति परंपराओं में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग धार्मिक अनुभव को विशिष्ट शास्त्रीय भाषा के एकाधिकार से बाहर लाने की व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा था। Lele द्वारा संपादित भक्ति-विमर्श में भी भाषा, समुदाय और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रश्नों को भक्ति के अध्ययन से जोड़ा गया है।¹⁶

गंगासती की लोकभाषा को इसलिए केवल ‘सरल भाषा’ कहना पर्याप्त नहीं होगा। वह **ज्ञानमीमांसीय भाषा** है। वह यह स्थापित करती है कि आध्यात्मिक सत्य केवल शास्त्रों की कठिन भाषा में ही व्यक्त नहीं हो सकता। लोक के अनुभव, प्रतीक और शब्द भी दार्शनिक अर्थवत्ता ग्रहण कर सकते हैं। ‘मेरु’ इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। मेरु कोई सामान्य घरेलू वस्तु नहीं, बल्कि भारतीय धार्मिक कल्पना में विराट और ब्रह्मांडीय प्रतीक है। गंगासती इसे मनुष्य के आंतरिक अनुभव से जोड़ देती हैं। इस प्रकार ब्रह्मांड और मन के बीच

एक काव्यात्मक संबंध स्थापित होता है। एक ओर विराट पर्वत है, दूसरी ओर साधक का मन; बाहरी स्थिरता और आंतरिक स्थिरता का यह संबंध उनके दर्शन को अत्यंत संक्षिप्त किंतु गहरा रूप देता है।

लोकभाषा यहाँ ज्ञान को सरल बनाने मात्र का काम नहीं करती; वह ज्ञान की सत्ता को पुनर्परिभाषित करती है। लोकानुभव स्वयं ज्ञान का स्रोत बनता है। इसीलिए गंगासती का काव्य शास्त्रीय दर्शन का 'सरलीकृत संस्करण' नहीं है। वह लोक-अनुभव से निर्मित स्वतंत्र आध्यात्मिक चिंतन है। इसी संदर्भ में गंगासती को 'लोकदार्शनिक' कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है। लोकदर्शन किसी व्यवस्थित दर्शनशास्त्र का नाम नहीं, बल्कि अनुभव, प्रतीक, नैतिकता और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से निर्मित जीवन-ज्ञान है। गंगासती की कविता में यह जीवन-ज्ञान लोकभाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और सामुदायिक स्मृति में संरक्षित रहता है।

‘मेरु’ और मन : आंतरिक स्थिरता का आध्यात्मिक सिद्धांत
गंगासती की प्रसिद्ध पंक्ति—“मेरु भी डगमगा जाए, जिसका मन न डगमगाए”— उनकी संपूर्ण आध्यात्मिक दृष्टि को समझने की एक केंद्रीय कुंजी है। *Women Writing in India* में यह पद अंग्रेजी रूपांतर के साथ पृष्ठ 87–88 पर प्रस्तुत है।¹⁷ इस पद में ‘मेरु’ स्थिरता की चरम कल्पना का प्रतीक है। यदि मेरु भी डगमगा सकता है, तो संसार में कोई बाहरी सत्ता पूर्णतः स्थिर नहीं है। लेकिन इसी अस्थिरता के बीच गंगासती मन की स्थिरता को साधना का लक्ष्य बनाती हैं। यहाँ मन केवल मनोवैज्ञानिक इकाई नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सत्ता है। मन का डगमगाना अस्तित्वगत असंतुलन का संकेत है, मन का स्थिर रहना आत्मबोध की दिशा में प्रगति का।

इस दृष्टि से गंगासती का स्थैर्य-विचार निष्क्रियता का समर्थन नहीं करता। स्थिर मन संसार से पलायन नहीं करता; वह

संसार की अस्थिरता के बीच विवेक बनाए रखता है। संकट से बचना साधना नहीं है; संकट में स्वयं को न खोना साधना है। यही कारण है कि गंगासती का ‘मन’ नैतिक भी है और आध्यात्मिक भी। यहाँ आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दावली का उपयोग करते समय ऐतिहासिक सावधानी आवश्यक है। गंगासती आधुनिक मानसिक-स्वास्थ्य सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करतीं। फिर भी उनकी कविता मनुष्य की आंतरिक प्रतिक्रिया, आत्मसंयम और संकट में संतुलन के प्रश्न से गहरे स्तर पर जुड़ती है। Pechilis द्वारा भक्ति को सक्रिय सहभागिता और embodied practice के रूप में समझने का आग्रह इस पद को भी व्यापक संदर्भ प्रदान करता है।¹⁸

गंगासती का संदेश यह नहीं है कि बाहरी संसार स्थिर हो जाएगा। उसका आशय इसके विपरीत है—संसार की अस्थिरता अपरिहार्य है, इसलिए साधक को अपने भीतर स्थिरता निर्मित करनी होगी। इस प्रकार ‘मेरु’ का रूपक बाहरी विश्व से आंतरिक चेतना की ओर एक निर्णायक दार्शनिक संक्रमण है।

गुरु, ‘वचन’ और आत्मबोध की प्रक्रिया

गंगासती के काव्य में गुरु का स्थान केंद्रीय है, किंतु गुरु को केवल किसी धार्मिक संस्था अथवा संप्रदाय के प्रमुख के रूप में समझना उनके चिंतन को सीमित करेगा। गुरु वह सत्ता है, जो साधक को स्वयं की ओर लौटाती है। गुरु की वाणी ज्ञान का अंतिम उपदेश नहीं, आत्मबोध की प्रक्रिया को सक्रिय करने वाला माध्यम है।

‘वचन’ इसी संदर्भ में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। गंगासती के आध्यात्मिक चिंतन पर उपलब्ध अध्ययन में ‘वचन’ को शब्द, नाम, मंत्र अथवा आध्यात्मिक निर्देश की अर्थ-परंपरा से जोड़ा गया है, इसे शरीर, मन और आत्मा की आंतरिक संगति से भी संबंधित माना गया है।¹⁹ भानदेव की *Gangasatinu Adhyatma Darshan* गंगासती के

आध्यात्मिक चिंतन को समझने के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्रोत है।¹⁰ 'वचन' को यदि केवल 'कहा हुआ शब्द' माना जाए तो उसकी आध्यात्मिक शक्ति समाप्त हो जाती है। गंगासती की दृष्टि में वचन परिवर्तनकारी है। वह तब सार्थक है जब सुनने वाले के भीतर कोई प्रक्रिया प्रारंभ हो। इस अर्थ में 'वचन' ज्ञान और साधना के बीच का सेतु है।

गंगासती की अपनी कविता भी वचन का ऐसा ही रूप है। वे पानबाई को संबोधित करती हैं, पर उनका संबोधन केवल एक ऐतिहासिक व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता। पानबाई धीरे-धीरे साधक की प्रतिनिधि बन जाती हैं। कविता का श्रोता व्यापक हो जाता है। इस प्रकार स्त्री-से-स्त्री संवाद सामुदायिक आध्यात्मिक संवाद में रूपांतरित होता है। गुरु-तत्त्व और स्त्री-एजेंसी का यह संबंध विशेष महत्वपूर्ण है। गंगासती स्वयं उस स्थान पर हैं, जहाँ से ज्ञान दिया जाता है। वे केवल गुरु की वाणी की पुनरावृत्ति नहीं करतीं, वे उसे अपने अनुभव और अपनी भाषा में व्याख्यायित करती हैं, इसीलिए उनका गुरु-तत्त्व स्त्री के ज्ञानाधिकार को भी वैधता प्रदान करता है।

भक्ति, अहंकार और कर्ताभाव : आत्म-परिष्कार का सिद्धांत
गंगासती के चिंतन में अहंकार का प्रश्न अत्यंत केंद्रीय है। उनके यहाँ आध्यात्मिक साधना का एक प्रमुख उद्देश्य 'मैं' की कठोरता को कम करना है। यह आत्म-निषेध नहीं, बल्कि अहंकार के विघटन की प्रक्रिया है। भक्त को अपने कर्म, ज्ञान और उपलब्धियों पर स्वामित्व-बोध के कारण उत्पन्न होने वाले अहंकार से मुक्त होना है। यहाँ 'कर्ताभाव' का निषेध विशेष अर्थ ग्रहण करता है। यदि मनुष्य स्वयं को प्रत्येक कर्म का अंतिम और स्वतंत्र कर्ता मानता है, तो उपलब्धि के साथ अहंकार और विफलता के साथ पीड़ा जुड़ती है। कर्ताभाव का त्याग इसलिए निष्क्रियता नहीं, बल्कि कर्म के अहंकारपूर्ण स्वामित्व से मुक्ति है।

गंगासती की भक्ति में विनम्रता इसी कारण केंद्रीय है। भक्त अपने आध्यात्मिक अनुभव को उपलब्धि के रूप में प्रदर्शित नहीं करता। वह स्वयं को किसी विशेष धार्मिक श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं मानता। इस दृष्टि से भक्ति व्यक्ति को भीतर से विनम्र बनाती है और उसके सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन लाती है। Pechilis की भक्ति की अवधारणा यहाँ उपयोगी है, क्योंकि वे भक्ति को केवल मानसिक भावना के बजाय सक्रिय सहभागिता के रूप में देखने का आग्रह करती हैं।¹¹ यदि भक्ति सहभागिता है, तो उसका परीक्षण जीवन में होना चाहिए। गंगासती के लिए भी भक्ति का अर्थ यही है कि साधक के मन, वाणी और कर्म में परिवर्तन दिखाई दे। इस प्रकार गंगासती का अहंकार-विरोध केवल धार्मिक नैतिकता नहीं है; यह एक प्रकार का **आत्म-निर्माण का सिद्धांत** है। व्यक्ति अपने भीतर यह पहचानता है कि उसका 'मैं' किन इच्छाओं, मान्यताओं और स्वामित्व-बोध से निर्मित है। इस पहचान से आत्मबोध की प्रक्रिया शुरू होती है।

विचार, वाणी और आचरण: आध्यात्मिक नैतिकता

गंगासती की आध्यात्मिक दृष्टि में विचार, वाणी और आचरण का संबंध निर्णायक है। किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक होने का प्रमाण उसके बाहरी धार्मिक चिह्नों से अधिक उसके जीवन की संगति में निहित है। वह जो सोचता है, उसे बोलता है और जो बोलता है, उसे अपने जीवन में जीता है—यही आध्यात्मिक प्रामाणिकता का आधार है।

इस दृष्टि से गंगासती की भक्ति मूलतः नैतिक है। ईश्वर के प्रति समर्पण यदि मनुष्य के व्यवहार को नहीं बदलता, तो वह अधूरा है। आध्यात्मिक ज्ञान को सामाजिक आचरण में रूपांतरित होना चाहिए। इसलिए सत्य, संयम, समभाव, विनम्रता और अहंकार-त्याग उनके चिंतन में परस्पर जुड़े हुए हैं। यहाँ 'मन' और 'वचन' के बीच संबंध भी महत्वपूर्ण है। मन अशांत हो और वाणी आध्यात्मिकता का प्रदर्शन करे, तो यह आध्यात्मिक विडंबना है। इसी प्रकार व्यक्ति

यदि सत्य की बात करे लेकिन व्यवहार में अहंकार और भेदभाव से संचालित हो, तो उसका ज्ञान केवल भाषिक प्रदर्शन रह जाता है।

गंगासती की यह दृष्टि भक्ति को एक नैतिक अनुशासन में बदल देती है। भक्त होना किसी संप्रदाय की सदस्यता नहीं, बल्कि एक विशिष्ट प्रकार का मनुष्य बनना है। यह मनुष्य अपने भीतर और बाहर के संबंधों में सजग है। वह अपने शब्दों की जिम्मेदारी समझता है, अपने मन की अस्थिरता को पहचानता है और दूसरों के प्रति अहंकारपूर्ण व्यवहार से बचने का प्रयत्न करता है। Lele के भक्ति-विमर्श में समुदाय, आलोचना और सामाजिक वैधता के प्रश्नों को जिस प्रकार भक्ति के व्यापक अध्ययन से जोड़ा गया है, उस संदर्भ में गंगासती की नैतिकता को भी निजी साधना से आगे सामाजिक अर्थों में पढ़ा जा सकता है।¹² उनकी भक्ति व्यक्ति के भीतर परिवर्तन करती है, लेकिन उस परिवर्तन का अंतिम परीक्षण सामाजिक व्यवहार में ही होता है।

स्त्री-अस्मिता और आध्यात्मिक स्वायत्तता

गंगासती की स्त्री-अस्मिता को समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि उनकी कविता स्त्री को किस प्रकार आध्यात्मिक विषय और कर्ता दोनों बनाती है। वह स्त्री को केवल भक्ति की भावुक पात्र नहीं बनाती; वह उसे साधना करने वाली, सुनने वाली, समझने वाली और अंततः आत्मबोध की ओर बढ़ने वाली चेतना के रूप में स्थापित करती है। Pechilis द्वारा भक्ति को embodiment की अवधारणा से जोड़ना यहाँ विशेष रूप से उपयोगी है।¹³ भक्ति केवल मन में घटने वाली घटना नहीं है; वह शरीर, वाणी, अभ्यास, सामाजिक सहभागिता और धार्मिक क्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। गंगासती की कविता में भी आध्यात्मिकता जीवन से अलग कोई अमूर्त अनुभव नहीं है। साधक को सुनना, बोलना, सत्संग करना, अनुशासन अपनाना और व्यवहार बदलना है।

इससे गंगासती की स्त्री-अध्यात्म की एक विशिष्ट संरचना सामने आती है। उनकी एजेंसी तीन परस्पर संबद्ध स्तरों पर काम करती है— वाणी की एजेंसी, ज्ञान की एजेंसी और शिक्षण की एजेंसी। वे बोलती हैं; वे आध्यात्मिक सत्य की व्याख्या करती हैं और वे दूसरी स्त्री को साधना का मार्ग दिखाती हैं। इस दृष्टि से गंगासती को आधुनिक अर्थ में ‘नारीवादी कवयित्री’ कहना सावधानी की माँग करता है। ऐसा कहना ऐतिहासिक अवधारणाओं को पीछे की ओर आरोपित करने का जोखिम पैदा करता है। किंतु उन्हें स्त्री-अध्यात्म की कवयित्री कहना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि उनकी काव्यात्मक स्थिति स्त्री के आध्यात्मिक ज्ञान को वैधता देती है।

यहाँ आध्यात्मिक स्वायत्तता का अर्थ सामाजिक संस्थाओं से पूर्ण विच्छेद नहीं है। गंगासती का चिंतन गुरु, सत्संग और परंपरा को अस्वीकार नहीं करता। उनकी स्वायत्तता परंपरा के भीतर अपनी आवाज़ निर्मित करने में है। वे परंपरा से बाहर निकलकर नहीं, बल्कि उसी के भीतर ज्ञान की स्त्री-वाणी को सशक्त बनाती हैं। यही उनकी मौलिकता है।

निष्कर्ष : लोकभाषा से लोकदर्शन और स्त्री-स्वर से आध्यात्मिक स्वायत्तता तक

गंगासती का काव्य गुजराती संत-परंपरा में स्त्री-अनुभव, लोकभाषा और आध्यात्मिक ज्ञान के एक विशिष्ट अंतर्संबंध को सामने लाता है। उनकी कविता को केवल भक्ति-गीतों के रूप में पढ़ना उनके साहित्यिक और दार्शनिक महत्त्व को सीमित करना होगा। वह एक ऐसी लोक-आध्यात्मिक ज्ञान-परंपरा का निर्माण करती है जिसमें अनुभव स्वयं ज्ञान का स्रोत है, लोकभाषा उसकी अभिव्यक्ति है और साधना उसका सत्यापन।

गंगासती की भक्ति भावुक समर्पण से आगे आत्म-अनुशासन की प्रक्रिया है। भक्त को अहंकार छोड़ना है, कर्ताभाव से मुक्त होना है, गुरु-वाणी को समझना है, सत्संग में रहना है

और विचार, वाणी तथा आचरण के बीच संगति स्थापित करनी है। इसीलिए उनकी भक्ति नैतिकता से अलग नहीं है। आध्यात्मिक अनुभव का प्रमाण व्यक्ति के व्यवहार में दिखाई देना चाहिए।

‘मेरु’ का रूपक इस संपूर्ण चिंतन को एक प्रभावशाली दार्शनिक रूप देता है। बाहरी संसार की अस्थिरता के बीच मन की स्थिरता ही वास्तविक साधना है। इस स्थिरता का अर्थ संसार से पलायन नहीं, बल्कि संसार की अस्थिरता के बीच आत्म-विवेक को सुरक्षित रखना है। इसीलिए गंगासती की कविता का मनोवैज्ञानिक आयाम आधुनिक मानसिक-स्वास्थ्य की वैज्ञानिक अवधारणाओं से अलग होते हुए भी मानवीय आत्म-संयम और संकट-सहनशीलता की एक महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

उनकी लोकभाषा भी केवल शैलीगत चुनाव नहीं है। वह ज्ञान के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया है। जब दार्शनिक प्रश्न लोकभाषा में व्यक्त होते हैं, तो आध्यात्मिक ज्ञान किसी विशिष्ट शास्त्रीय वर्ग का एकाधिकार नहीं रहता। गंगासती की कविता यह सिद्ध करती है कि लोकानुभव भी दर्शन का आधार बन सकता है और दैनिक जीवन के प्रतीक गहरे आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण कर सकते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण उनका स्त्री-स्वर है। गंगासती स्त्री को केवल भक्ति का विषय नहीं बनाती; उसे ज्ञान का कर्ता बनाती हैं। पानबाई को संबोधित उनकी वाणी स्त्री से स्त्री तक ज्ञान के संचार की ऐसी संरचना निर्मित करती है जिसमें गुरु और शिष्या दोनों स्त्रियाँ हैं। यह संरचना आध्यात्मिक ज्ञान पर पुरुष-प्रधान अधिकार की एक वैकल्पिक संभावना सामने लाती है। यहाँ स्त्री की स्वायत्तता किसी आधुनिक राजनीतिक घोषणा में नहीं, बल्कि ज्ञान देने की स्थिति में उपस्थित होने से निर्मित होती है।

इस अर्थ में गंगासती की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि उनकी **ज्ञानात्मक agency** है। वे केवल यह नहीं कहती कि स्त्री

भी भक्ति कर सकती है; वे यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री आध्यात्मिक सत्य को समझ सकती है, उसकी व्याख्या कर सकती है और उसे दूसरी स्त्री तक पहुँचा सकती है। यह स्त्री-अध्यात्म की एक ऐसी संरचना है जिसमें अनुभव प्रमाण बनता है और वाणी ज्ञान का माध्यम।

गंगासती को इसलिए केवल ‘सौराष्ट्र की संत-कवयित्री’ कहना पर्याप्त नहीं होगा। वे लोकभाषा की दार्शनिक शक्ति को सामने लाने वाली कवयित्री हैं; वे आध्यात्मिक अनुशासन को भक्ति का आधार बनाने वाली चिंतक हैं; वे गुरु-शिष्य संबंध को स्त्री-से-स्त्री ज्ञान-संप्रेषण में रूपांतरित करने वाली आध्यात्मिक शिक्षिका हैं; और वे ऐसी लोकदार्शनिक हैं जिनके यहाँ आत्मबोध सामाजिक नैतिकता से अलग नहीं है।

उनके काव्य का केंद्रीय संदेश इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है—भक्ति केवल भावना नहीं, चेतना का अनुशासन है; समर्पण केवल आत्म-विलोपन नहीं, अहंकार-विलोपन है; गुरु केवल बाहरी प्राधिकारी नहीं, आत्मबोध का माध्यम है; वचन केवल शब्द नहीं, परिवर्तनकारी आध्यात्मिक शक्ति है; और स्त्री-स्वर केवल अभिव्यक्ति नहीं, ज्ञान पर अधिकार की घोषणा है, इसीलिए गंगासती का साहित्य भारतीय भक्ति परंपरा में स्त्री की आध्यात्मिक स्वायत्तता के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी कविता हमें भक्ति को पुनः पढ़ने की चुनौती देती है—धर्म के रूप में नहीं केवल, बल्कि अनुभव के रूप में; भावना के रूप में नहीं केवल, बल्कि नैतिक आत्म-निर्माण के रूप में; और स्त्री की भक्ति के रूप में नहीं केवल, बल्कि स्त्री द्वारा निर्मित आध्यात्मिक ज्ञान की स्वतंत्र परंपरा के रूप में।

फुटनोट

1. Karen Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti* (New York: Oxford University Press, 1999), 3–11. इस ग्रंथ

की प्रस्तावना भक्ति की प्रचलित 'devotion' अवधारणा की आलोचना करते हुए सक्रिय सहभागिता और embodiment पर बल देती है। ग्रंथ का प्रकाशन 1999 में हुआ और इसकी विषय-सूची में 'Bodies of Poetry' तथा 'Regional Voices through Song' जैसे अध्याय भी सम्मिलित हैं। ([OUP Academic](#))

2. Jayant Lele, ed., *Tradition and Modernity in Bhakti Movements* (Leiden: E. J. Brill, 1981), 1–15. Lele का 'The Bhakti Movement in India: A Critical Introduction' इसी खंड की पृष्ठ 1–15 पर है और भक्ति को व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में देखने का आधार प्रदान करता है। ([Brill](#))

3. Susie Tharu and K. Lalita, eds., *Women Writing in India: 600 B.C. to the Early Twentieth Century*, vol. 1 (New York: Feminist Press at CUNY, 1991), 87–88. गंगासती का 'Oh, the Meru mountain may be swayed' पद इन्हीं पृष्ठों पर प्रस्तुत किया गया है। उपलब्ध शैक्षिक सूची में भी गंगासती को इसी खंड में 12वीं–14वीं शताब्दी के अंतर्गत दर्ज किया गया है। ([SNDT Women's University](#))

4. David Kinsley, "Devotion as an Alternative to Marriage in the Lives of Some Hindu Women Devotees," in Jayant Lele, ed., *Tradition and Modernity in Bhakti Movements* (Leiden: E. J. Brill, 1981), 83–93. इस अध्याय का विषय स्त्री-भक्तों की आध्यात्मिक आकांक्षा और सामाजिक भूमिकाओं के संबंध से संबंधित है। पुस्तक की विषय-सूची में अध्याय की पृष्ठ-सीमा 83 से 93 दी गई है। ([Google Books](#))

5. Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti*, 43–76. इस भाग में 'Bodies of Poetry' के अंतर्गत भक्ति-काव्य, सहभागिता और धार्मिक अनुभव के embodied आयामों का विश्लेषण किया गया है। ([Google Books](#))

6. Lele, ed., *Tradition and Modernity in Bhakti Movements*, 1–15. भक्ति के सामाजिक, ऐतिहासिक और वैचारिक संदर्भों पर इसी प्रारंभिक विमर्श को गंगासती की लोकभाषा के संदर्भ में सैद्धांतिक आधार बनाया गया है। ([Brill](#))

7. Tharu and Lalita, eds., *Women Writing in India*, 87–88. गंगासती के 'Meru' संबंधी पद का पाठ/अनुवाद इन्हीं पृष्ठों पर उपलब्ध है। ([SNDT Women's University](#))

8. Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti*, 3–11, 43–76. भक्ति को सक्रिय सहभागिता तथा embodied धार्मिक अनुभव के रूप में समझने की सैद्धांतिक अवधारणा के लिए। ([OUP Academic](#))

9. Ami Upadhyay और Dushyant Nimavat का 2020 का लेख यहाँ जानबूझकर संदर्भ के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया है, क्योंकि आपने 2000 तक की सामग्री की सीमा निर्धारित की है। 'वचन' संबंधी विशिष्ट विवेचन मूल प्रस्तुत लेख में उपलब्ध था, परंतु उसका आधुनिक प्रकाशित स्रोत 2020 का है; इसलिए वर्तमान संस्करण में उस दावे को स्वतंत्र ऐतिहासिक तथ्य के रूप में उद्धृत नहीं किया गया है।

10. Bhandev, *Gangasatinu Adhyatma Darshan* (Rajkot: Pravin Prakashan, 1999), 85. उपलब्ध पूर्व-2000 शोध-सामग्री में इस ग्रंथ और पृष्ठ 85 का स्पष्ट संदर्भ दर्ज है। ([Indira Gandhi Memorial Library](#))

11. Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti*, 3–11. भक्ति को केवल भावनात्मक devotion के बजाय active participation के रूप में समझने की अवधारणा। ([OUP Academic](#))

12. Lele, ed., *Tradition and Modernity in Bhakti Movements*, 1–15; विशेषतः भक्ति आंदोलन को सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन और समुदाय के संदर्भ में देखने की प्रस्तावना। ([Brill](#))

13. Pechilis Prentiss, *The Embodiment of Bhakti*, 43–76; तथा 'Regional Voices through Song' संबंधी विमर्श। ([OUP Academic](#))

संदर्भ-सूची

प्राथमिक/गंगासती-संबंधी स्रोत

Bhandev. *Gangasatinu Adhyatma Darshan*. Rajkot: Pravin Prakashan, 1999.

Gangasati. *Gangasati na Bhajano*. उपलब्ध विभिन्न संकलनों में। गंगासती की काव्य-परंपरा के प्राथमिक पाठ के रूप में।

द्वितीयक स्रोत

Carman, John B. "Conceiving Hindu 'Bhakti' as Theistic Mysticism." In Steven T. Katz, ed., *Mysticism and Religious Traditions*. New York: Oxford University Press, 1983.

Eck, Diana L., and Françoise Mallison. *Devotion Divine: Bhakti Traditions from the Regions of India*. Paris: École Française d'Extrême-Orient, 1991.

Kinsley, David. "Devotion as an Alternative to Marriage in the Lives of Some Hindu Women Devotees." In Jayant Lele, ed., *Tradition and Modernity in Bhakti Movements*. Leiden: E. J. Brill, 1981, 83–93.

Lele, Jayant, ed. *Tradition and Modernity in Bhakti Movements*. Leiden: E. J. Brill, 1981. ([Google Books](#))

Pechilis Prentiss, Karen. *The Embodiment of Bhakti*. New York: Oxford University Press, 1999. ([Google Books](#))

Tharu, Susie J., and K. Lalita, eds. *Women Writing in India: 600 B.C. to the Early Twentieth Century*. Vol. 1. New York: Feminist Press at CUNY, 1991. विशेषतः गंगासती, 87–88. ([SNDT Women's University](#))

Corresponding Author: डॉ. मेधा

E-mail: medha.hindi@satyawatie.du.ac.in

Received: 06 December, 2024; Accepted: 20 December, 2024. Available online: 30 December, 2024

Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License

